ओ३म्

श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

वैदिक विचार माला का पुष्प संख्या - ५

शाश्वत - सत्य

लेखक

वैदिक मिशनरी कमलेशकुमार आर्य अग्निहोत्री

प्रकाशक

श्री चुनीलालभाई रूपसीभाई पोपट

प्लॉट नम्बर ६५/६६, वार्ड १० बी.सी. इफ्को कॉलोनी के सामने,

आर्यसमाज मार्ग, गांधीधाम-कच्छ ३७०२०१

कृपया : यह पुस्तिका आप स्वयं आद्योपान्त पढ़िये और अन्य अधिकाधिक व्यक्तियोंको भी अवश्य पढ़वाइये ।

पुनरावर्त्तन

सरल भाषा और मण्डनात्मक शैली में विभिन्न विषयों पर मेरे द्वारा लिखित **१०१ पुस्तकें** १३ मार्च १९९७ को निर्मित **"वैदिक लेखमाला प्रकाशक न्यास"** मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) की ओर से बारम्बार प्रकाशित और भारतवर्ष के अनेकानेक नगरों - ग्रामों तथा कुछ बाहर के देशों में निःशुल्क प्रेषित एवं वितरित की गईं उन्हें सर्व कल्याणकारी **सत्य सनातन वैदिकधर्म** प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी माना गया । यह जानकारी प्रबुद्ध पाठकों से प्राप्त कर मैं अति उत्साहित हुआ, किन्तु कतिपय कारणों से इस 'न्यास' का समन्वय २ मई २००८ को विश्व प्रसिद्ध **"पतञ्जलि योगपीठ हरिद्वार न्यास"** में कर दिया गया । तब सम्बन्धित सत्साहित्यप्रेमियों को बहुत निराशा हुई । तत्पश्चात् -

५ से ९ जनवरी २०११ तक गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत **भाभर** नामक कस्बे में सम्पन्न हुए **'यजुर्वेद पारायण बृहद् यज्ञ'** के अवसर पर मैं प्रचारार्थ रहा । तब वहाँ के निवासी आर्यश्रेष्ठी **श्री अशोकभाई चुनीलालभाई पोपट** ने अपने श्री पूज्य दादा जी **रूपसीभाई करमणभाई पोपट** की पुण्यस्मृति में उन पुस्तकों के प्रकाशन और विभिन्न स्थानों पर प्रेषित करने का व्यय भार स्वीकारते हुए उन्हें **"वैदिक विचार माला"** के नाम से पुनः प्रकाशित करवाते रहने की इच्छा व्यक्त की । अतः मैंने उन पुस्तकों का प्रकाशन कार्य आरम्भ करवा दिया है, जिनको पढ़ कर अनेकों नर नारी आचारण से वैदिकधर्मानुयायी बने, यह सम्बन्धित महानुभाव भलीभाँति जानते हैं ।

स्वाध्यायप्रेमी सज्जनो ! आपको यह विदित ही है कि आज की अधिक व्यस्ततावाले इस युग में अधिकांश व्यक्ति बड़ी पुस्तकों को पढ़ने के लिये समय नहीं निकाल पाते और क्लिष्ट भाषा हो तो उसे समझ नहीं पाते । ऐसी स्थिति में ये सरल भाषा में लिखी लघु पुस्तिकाएँ अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं, और होती रहेंगी । मैं हृदय से चाहता हूँ कि ये **'वैदिक विचार माला'** के पुष्प अधिकाधिक हाथों में पहुँचे, जिससे कि धर्म अध्यात्म तथा कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित व्यात भ्रान्तियों का निवारण हो । मेरे अपने विश्वास के अनुसार इन पुस्तिकाओं को पढ़कर अनेकानेक स्त्री-पुरुष शाश्वत वेदपथ के पथिक अवश्य बनेंगे ।

यह पुस्तक निःशुल्क हम अपने डाक व्यय से आपके पते पर प्रेषित कर रहे हैं । इसे आद्योपान्त पढ़कर आप अपने विचारों से हमें अवगत कीजियेगा । आपके पत्र प्राप्त होते रहेंगे तो आगामी पुष्प भी हम आपको निःशुल्क सादर समर्पित करते रहेंगे -

लेखक

शाश्वत-सत्य

प्रत्येक मनुष्य को यह जानना बहुत आवश्यक है कि-

(१) जो दिखाई दे रहा है और अनुभव में आ रहा है यह सब क्या है ?

(२) जो दिखाई दे रहा है तथा अनुभव में आ रहा है यह सब किसके लिये है ?

(३) इसका स्रष्टा, नियामक व्यवस्थापक और स्वामी कौन है ?

उपर्युक्त यथार्थ बोध के अभाव में मानव जीवन की सफलता असम्भव है । इस वैदिक विश्वास को आधार बनाकर प्रस्तुत किये जा रहे उपयोगी विचार इस प्रकार से हैं -

प्रकृति

सर्व प्रथम संसार एवं शरीर सम्बन्धी **'शाश्वत सत्य'** यह है कि - सत्व, रज, तम गुणरूपी **प्रकृति** नामक अनादि जड़ पदार्थ की विकृत अवस्था का नाम ही संसार और शरीर है । जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द नामक पाँच विषयों का समुदाय है । जिसे आँखो द्वारा देख कर जिह्वा से चख कर. नाक से सूंघ कर, त्वचा से छू कर एवं कानों के द्वारा सुन कर जाना जाता है ।

यह दृश्य-अदृश्य जगत् मिथ्या अथवा स्वप्न नहीं है । दार्शनिकों ने इसे सर्वथा सत्य, किन्तु परिवर्तनशील और अनित्य माना है । अतः संसार वास्तव में है क्या ? यह जानकर ही इससे समुचित लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।

जीव

जो दृष्टिगोचर हो रहा है तथा अनुभव में आ रहा है यह है किसके लिये ? इसका उत्तर है-उत्पत्ति-विनाश से परे-सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष, ज्ञान और प्रयत्न गुणों से युक्त एकदेशी अल्पज्ञ, सत्-

चित् स्वरूप आत्माओं के लिये । जिन्हें दार्शनिकों ने अनादि तथा अनन्त माना, और **जीव-जीवात्मा-आत्मा** कहकर पुकारा है ।

जीव का जड़ प्रकृति से संयोग एवं वियोग होता रहता है, नष्ट दोनों ही नहीं होते । अर्थात् **जीवात्मा** तथा **प्रकृति** दोनों शाश्वत हैं । आत्मा के साथ प्रकृतिपाश का बन्धन प्रवाह से अनादि है । सर्वप्रथम जीवात्मा प्रकृतिपाश में कब आया ? यह प्रश्न ही निरर्थक है । क्योंकि जीव के साथ प्रकृति का संयोग और वियोग अनादि तथा अनन्त है ।

स्वभाव से अल्पज्ञ आत्मा (अविद्यावश) प्रकृतिपाश में फँसता है, और अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियों (शरीरों) को धारण करता हुआ रूप, रस, गन्धादि पाँचो विषयों में उलझा रहता है ।

जीवात्माएँ असंख्य हैं, और जितनी हैं उतनी ही थीं तथा रहेंगी, न्यूनाधिक नहीं हुआ करतीं । जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं, किन्तु अपने शुभाशुभ कृतकर्मों का फल, ईश्वर (जिसका कि वर्णन आगे करेंगे) की न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत-पशु-पक्षी, कीट पतङ्गादि अथवा मनुष्य की योनि में रह कर सुख-दुःख के रूप में भोगते हैं । आत्माएँ स्वभाव से निर्विकारी हैं ।

मोक्ष

जन्म-जन्मातरों से सन्तप्त जीव अपने विशेष पुरुषार्थ से प्रकृतिपाश को काटकर (छत्तीस हजार बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होने तक की अवधि में) ईश्वर के आनन्द में निमग्न रहता है । (एक सृष्टि की उत्पत्ति व प्रलयकाल की अवधि आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्ष मानी गई है ।) तत्पश्चात् अपने शेष कर्मों का फल भोगने के लिये '**आत्मा**' प्रकृति से सम्बद्ध होकर सर्व प्रथम मानव तन में आता है, उस समय यदि अपनी स्वतन्त्रता का सदुपयोग करते हुए मोक्ष के लिये यत्नशील हो जाता है तो प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर परमेश्वर के आनन्द की अनुभूति का

अवसर पुनःप्राप्त कर लेता है । अन्यथा विषय विकारों की ओर प्रवृत होने पर जन्म-मरण के चक्र में फँस कर सुख-दुःख भोगने लगता है । जीवों के लिये कर्म-बन्धन अनादि और अनन्त है । अतः अध्यात्मवेत्ताओं ने मोक्ष को (उपर्युक्त अवधि तक) प्रकृति के बन्धन से रहित होने का अवसर मान कर जीवात्मा की मुक्ति से पुनरावृत्ति के **'शाश्वत सत्य'** सिद्धान्त को स्वीकारा है ।

ईश्वर

अब यदि कोई यह पूछे कि इस-जड़-जङ्गम सृष्टि का सृजनहार, नियामक, रक्षक, पालक, स्वामी और संहारक कौन है ? -तो हम कहेंगे **'ईश्वर'** । जिसका कि निज तथा मुख्य नाम **'ओ३म्'** है । जो एक, (अद्वितीय) सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, अनादि एवं अनन्त है । वह जीवात्मा की भाँति प्रकृति के बन्धन में नहीं आता ।

त्रैतवाद

इन उपर्युक्त मान्यताओं का निष्कर्ष यह है कि संसार में एक जड़ तथा दो चेतन सत्ताएँ अर्थात् तीन पदार्थ अनादि और अनन्त हैं । जिन्हें ब्रह्मा से (आदिसृष्टि से) महर्षि जैमिनि पर्यन्त (महाभारतकाल तक) सम्पूर्ण भूमण्डल पर **ईश्वर, जीव, प्रकृति** के नाम से जाना जाता रहा ।

इस 'शाश्वत सत्य' के विपरीत वेद विरुद्ध मत-मतान्तरों द्वारा स्वीकार्य सिद्धान्तों से मानव समुदाय का कितना अहित हुआ और हो रहा है इसे स्वाध्यायशील सभी बुद्धिमान-मनीषी भलीभाँति जानते हैं ।

अकर्मण्यता

इतिहास साक्षी है-संसार को स्वप्न मानने वालों ने अर्थात् सत् प्रकृति की सत्ता पर विश्वास न रखने वालों ने भारतवर्ष की पराधीनता एवं दुरवस्था पर कभी विचार तक नहीं किया ।

उदांहरणार्थ-यहाँ विधर्मियों की खूनी तलवारों ने करोड़ो मनुष्यों की गर्दनें काट डालीं । निरपराध मूक प्राणियों को यज्ञ तथा देवी-देवताओं के नाम पर मौत के घाट उतारा गया, बाल-विवाह हुए । मृत पुरुषों के साथ जीवित स्त्रियाँ जलाई जाती रहीं, एवं सर्वत्र एक ही ब्रह्म की सत्ता स्वीकारनेवाले, अपने ही भाइयों को अछूत कह कर उनका तिरस्कार करते रहे, किन्तु अधिकांश धर्माचार्य-अध्यात्मवेत्ता-गुरु नामधारियों ने ये सब कुछ मूकदर्शक बन कर देखा, इसलिये कि जगत् तो मिथ्या है ।

अनात्मवादी

सत्-चित् **जीवात्मा** की सत्ता, जो नहीं स्वीकारते वे आज भी कहते हैं कर्म शरीर करता है । उनकी दृष्टि में पुनर्जन्म केवल कल्पना मात्र है । इस वेद विरुद्ध मान्यता से प्रभावित विश्व का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य स्वयं अपना तथा संसार का कितना अहित करता रहा और कर रहा है, यह हर बुद्धिमान व्यक्ति के लिये चिन्तन का विषय होना चाहिये ।

खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ (चाहे इसके लिये कुछ भी करना पड़े) ऐसी प्रवृत्ति वालों के कारण ही भूमण्डल पर अनैतिकता, अन्याय, अधर्म, अशान्ति को प्रश्रय मिला तथा मिल रहा है । अनात्मवादी केवल अपने शारीरिक सुखों की पूर्ति के लिये जीते हैं, उनकी दृष्टि में पाप-पुण्य कुछ भी नहीं, यह उनके व्यवहार से सिद्ध होता है ।

चाहे वाणी से न कहते हों परन्तु वर्तमान में संसार के अधिकांश मनुष्य अपने आचरण द्वारा यह प्रमाणित कर रहे हैं कि उन्हें जीवात्मा की सत्ता पर कोई विश्वास नहीं है ।

जो शाश्वत **'जीवात्मा'** को अस्वीकारते हैं उन्हें अशुभ कर्मों के प्रति भय क्योंकर होगा ? आप विचार कीजिये । क्योंकि उनकी मान्यतानुसार शरीर के अतिरिक्त कर्म फल भोगने वाला और तो

कोई हैं नहीं । अर्थात् शरीरान्त के पश्चात् कोई शेष तो रहता नहीं । इस प्रकार के अवैदिक विचारों ने मस्तिष्क विकृत कर मानव समुदाय को पाप की ओर प्रवृत किया, यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं है ।

आत्मवादी

कुछ व्यक्ति (जो अपने आपको आत्मज्ञानी समझते हैं) ऐसा मानते हैं कि देखना, सुनना, खाना-पीना आदि तो शरीर का धर्म है - आत्मा तो सर्वथा निर्लेप है । इस सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि चेतन आत्मा की सहायता के बिना जड़ शरीर कुछ भी नहीं कर सकता । यदि पञ्च महाभूतों से बना शरीर ही सब कुछ है तो फिर मुर्दे के शरीर में भी ये तत्व विद्यमान रहते हैं, उसे सक्रिय होना चाहिये? किन्तु ऐसा कभी होता नहीं । अतः सिद्ध है कि नाशवान् शरीर तो कर्म करने के लिये केवल साधन मात्र है, कर्ता तो **अविनाशी जीवात्मा** ही है ।

उपनिषदों में **'आत्मा'** शब्द का प्रयोग **ईश्वर और जीव** (दोनों) के लिय हुआ है । अतः प्रकरण के अनुसार अर्थ करना चाहिये । सर्वव्यापक **'आत्मा' (ईश्वर)** शरीर में रहनेवाले **'आत्मा' (जीव)** की भाँति कर्त्ता-भोक्ता नहीं है । किन्तु शरीर का उपयोग करनेवाला अल्पज्ञ **जीव** अपने सञ्चित संस्कारों के परिणामस्वरूप कर्मों की ओर प्रवृत्त होता, और कृतकर्मों का फल भोगता है । इस **'शाश्वत सत्य'** को जाने बिना कर्त्ता-भोक्ता सम्बन्धी भ्रान्ति का निवारण नहीं हो सकता ।

अनीश्वरवादी

जिन मत-पन्थों ने प्रकृति और आत्मा की सत्ता को तो स्वीकारा परन्तु ईश्वर की सत्ता को नहीं, वे अबतक यह बताने में असमर्थ रहे हैं कि इस ब्रह्माण्ड का संचालन नियमपूर्वक कैसे हो रहा है ? तथा जीवों के शुभाशुभ कर्मों का ज्ञान किसको है ?

अर्थात् सारा जड़-जङ्गम संसार किसके नियन्त्रण में है ?

हम देखते हैं कि पृथ्वी, सूर्य की परिक्रमा ठीक एक वर्ष में पूरी कर लेती है । चन्द्रमा की कलायें नियम पूर्वक घटती-बढ़ती रहती हैं । ठीक समय पर सूर्य उदित और अस्त होता आ रहा है । सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं में गति कर रहे हैं । तो प्रश्न उपस्थित होता है कि इन सब का नियामक तथा संचालक कौन है ? और माँ के गर्भ में बालक का निर्माण किसकी व्यवस्था से हो रहा है ? इत्यादि...।

ईश्वरवादी

'शाश्वत सत्य' के अभाव में आज ईश्वर विषयक प्रचलित विभिन्न (परस्पर विरोधी) विचारों से मानव समुदाय कितना भ्रमित हो रहा है, यह बताने की आवश्यकता नहीं । क्योकि वर्तमान का तथाकथित आस्तिक जगत् हमारे कथन की स्वयं पुष्टि कर रहा है । कितना बड़ा आश्चर्य है कि ईश्वर विश्वासियों में ईश्वर के नाम, **धाम** और **काम** सम्बन्धी बहुत बड़ा मत-भेद बना हुआ है, तथा ईश्वरोपासना का प्रकार भी वैदिकयुग की भाँति सबका समान नहीं है ।

ईश्वर का मुख्य और निज नाम

आदिसृष्टि में ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान=वेद के अनुसार **'ओ३म् क्रतोस्मर'** एवं संसार के सुप्रसिद्ध योगी **महर्षि पतञ्जलि** जी महाराज के बताये **'तस्यवाचकः प्रणवः'** को भूलकर मत-मतान्तरों से ग्रसित (भ्रमित) जन, जपने के लिय ईश्वर के अन्य अनेक नामों को आधार बना बैठे हैं।

ईश्वर का धाम = निवास स्थान

ईश्वर का धाम = निवासस्थान भी सब एक नहीं मानते - शिवलोक,वैकुण्ठ, क्षीरसागर, कैलास आदि अनेक स्थानों का वासी बताकर (कुछ आस्तिक कहलानेवालों के द्वारा) उस

सर्वव्यापक, असीम सत्ता को एकदेशी, ससीम बनाने का दुष्प्रयास किया गया है ।

कल्पना पर आधारित ईश्वर, जब से जीवात्मा की भाँति आने-जाने वाला माना जाने लगा तब से राष्ट्र, धर्म, संस्कृति का जो ह्रास हुआ, वह सर्वविदित है । अर्थात् अवतारवाद के विश्वास ने मानव समुदाय को कितना कर्त्तव्य विमुख बनाया-यह इतिहास से जाना जा सकता है । दुष्टों को दण्ड देने और सज्जनों की रक्षा करने के लिये ईश्वर स्वयं आयेगा । ऐसी आशा लगाकर बैठे तथाकथित ईश्वर विश्वासी भारतीय कितनी निर्दयता से **विधर्मियों द्वारा कुचले गये**, इस सत्य को कोई झुठला नहीं सकता ।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम एवं **योगीराज श्री कृष्ण** को ईश्वर का अवतार मानने से लाभ तो कुछ हुआ नहीं । हानि यह हुई कि सच्चे ईश्वर की उपासना एवं उक्त महापुरुषों के आदर्शों द्वारा प्राप्त होनेवाली प्रेरणाओं से मानव समुदाय वञ्चित रह गया । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है आज ईश्वरोपासना के स्थान पर मनमाना पूजा-पाठ, भजन-संकीर्तन करनेवाले अधिकांश व्यक्ति अपने जीवन, व्यवहार, आचरण द्वारा स्वयं को आस्तिक सिद्ध नहीं कर पा रहे ।

सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर प्रत्येक जीव के कर्मों को देखता और मनोभावों को जानता है । यह विश्वास दृढ़ होने पर ही मनुष्य के लिये पापकर्मों से बचना सम्भव है, अतः ईश्वर को एकदेशी मानने की भूल कभी नहीं करनी चाहिये ।

ईश्वर के कार्य

ईश्वर कार्य क्या करता है ? इसका संक्षिप्त उत्तर है - ईश्वर सृष्टि की रचना, पालना तथा प्रलय करता है और जीवात्माओं को उनके कर्मों का फल देता है । इस 'शाश्वत सत्य' से अनभिज्ञ तथाकथित ईश्वर विश्वासियों द्वारा ईश्वर के कार्यों की सूची में - किसी व्यक्ति विशेष का कृषिकार्य तथा छप्पर ठीक करने एवं किसी राजा के पाँव दबाने जैसी कल्पित कहानियों का समावेश हो

गया, और जिसने सारे ब्रह्माण्ड को धारण कर रखा है उसे अँगुली पर पहाड़ उठानेवाला बताने की भूल हुई, इत्यादि...।

भ्रान्ति

ईश्वर सम्बन्धी उपर्युक्त जानकारी के साथ हम आपको यह भी बता देना चाहते हैं कि वेदान्त के नाम पर हुआ और हो रहा प्रचार **'शाश्वत सत्य'** के सर्वथा विपरित है । जो अपने आपको ब्रह्म अथवा ईश्वर का अंश कहते हैं उन्हें वेद विरुद्ध विचारधारा से प्रभावित ही माना जावेगा । इन दोषपूर्ण मान्यताओं के परिणाम स्वरूप अल्पज्ञ-एकदेशी जीव अपने आपको सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक ब्रह्म अथवा उसका अंश समझकर अपना हित नहीं कर सकता यह हमारा निश्चित मत है ।

गुरुडम

'गुरुडम' से होनेवाली हानियों की ओर भी हम आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं ।

यहाँ डॉक्टर, इञ्जिनीयर,प्रोफेसर आदि बनना कठिन और साधु बनना सरल है । डॉक्टर, इञ्जिनीयर, प्रोफेसर आदि को प्रमाण पत्र की आवश्यकता है, साधु को नहीं ! डॉक्टर, इञ्जिनीयर, प्रोफेसर आदि बनने के लिये पर्याप्त धन, परिश्रम और समय चाहिये, साधु बनने के लिये नहीं । जहाँ बिना परिश्रम के किसी भी आयु में कोई भी व्यक्ति कभी भी साधु बन सकता हो, वहाँ धर्म और अध्यात्म का स्तर कैसा होगा ? यह आप स्वयं जान सकते हैं ।

नहीं त्याग-तप करे साधना, और न करे वेद स्वाध्याय ।
फिर भी स्वामी, साधु, सन्त-गुरु, ज्ञानी, परमहंस कहलाय ।।

जो ऐसे अनधिकारी साधु 'गुरु' बनकर मानव समुदाय को पथभ्रष्ट करते हैं, उनसे सर्व साधारण को सावधान करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं ।

संसार को मिथ्या और स्वार्थी बतानेवाले तथाकथित 'गुरु' नामधारी-भोलेभाले मनुष्यों को गुमराह कर उनका घर उजाड़ते तथा पुरुषार्थी व्यक्तियों को भिखमँगा बनाते हैं ।

गुरु का स्थान ईश्वर से भी बड़ा है । यह कहने और माननेवाले **'शाश्वत-सत्य'** से कितने दूर हैं ? आप विचार कीजिये । **गुरुडम** के कारण ही अनेक व्यक्ति ईश्वरोपासना से विमुख हो तथाकथित गुरुओं की आरतियाँ उतारते एवं उनके चित्रों को पूजने में अपने अमूल्य समय का दुरुपयोँग करते देख जाते हैं । चाहे माता-पिता, सास-स्वसुर आदि पूज्यों की सेवा का ध्यान न हो, किन्तु गुरु नामधारियों को उत्तम भोजन-वस्त्र, द्रव्यादि भेंट देने तथा उनके पाँव दबाने में अनेक अन्धविश्वासी (नादान) स्त्री-पुरुष गर्व एवं सन्तोष की अनुभूति कर रहे हैं ।

आश्चर्य तो यह है-जिन्होंने वेद, दर्शन, उपनिषद् देखे तक नहीं, वे 'गुरु' बनकर संसार को धर्म और अध्यात्म की जानकारी दे रहे हैं ! जिनको गौतम, कपिल, कणाद, पतञ्जलि, जैमिनि, वेदव्यास, याज्ञवल्क्य आदि ऋषि-महर्षियों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं, वे सर्वसाधारण को मुक्ति का मार्ग बता रहे हैं ! ।

निष्कर्ष

हमारा यह विश्वास है-कि वेदादि आर्षग्रन्थों के माध्यम से मानव समुदाय को **'शाश्वत सत्य'** का ज्ञान कराके ही विश्व में वैदिकयुग का-सा सुखद वातावरण पुनःनिर्मित किया जा सकता है । अर्थात् जब तक **ईश्वर, जीव, प्रकृति** के स्वरूप को ठीक-ठीक न समझा जावेगा तब तक चाहे कोई कितना भी यत्न करे, संसार का हित होना सम्भव नहीं है ।

हम आपको फिर से याद दिलाना चाहते हैं कि जो कुछ दिखाई दे रहा है और अनुभव में आ रहा है यह सब ज्ञान शून्य जड़ अर्थात् अनादि प्रकृति की विकृत अवस्था है । जिसे वैदिक दर्शनों में असत्य नहीं, सत्य - किन्तु परिवर्तनशील बताया है ।

जो दिखाई दे रहा अथवा अनुभव में आ रहा है, यह सब आत्माओं के लिये है, अर्थात् इन सबका उपयोग (उपभोग) जीव नाम की असंख्य अनादि चेतन सत्तायें करती हैं, और इस दृश्य-अदृश्य संसार का रचयिता, नियामक, व्यवस्थापक, पालक, संहारक स्वामी एकमात्र **सच्चिदानन्द** ईश्वर है । जिसके वास्तविक स्वरूप का युक्तियुक्त वर्णन विश्व के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **सत्यार्थप्रकाश** के प्रथम समुल्लास में युगप्रवर्तक **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती** जी महाराज ने अति उत्तमता से किया है ।

उपर्युक्त वर्णन को सार रूप में कहें तो-एक जड़ तथा दो चेतन, कुल तीन सत्ताएँ अनादि और अनन्त हैं । इन दो चेतन सत्ताओं में ईश्वर नामक सत्ता एक एवं जीवात्माएँ असंख्य हैं । इस **'शाश्वत सत्य'** को ठीक-ठीक समझकर और स्वीकार के ही हम अपना मानव जीवन सार्थक कर सकते हैं ।

पारस्परिक सम्बन्ध

जैसा कि हम बता चुके हैं उपर्युक्त तीनों पदार्थ (जिनमें एक जड़ तथा दो चेतन हैं) अनादि और अनन्त हैं । अर्थात् इनको किसी ने नहीं बनाया अथवा ये बने नहीं, इसलिये इनका कभी अन्त नहीं होगा ।

ज्ञान और शक्ति की दृष्टि से महान् होने के कारण ईश्वर सम्पूर्ण जड़-जङ्गम का स्वामी है, जो कि स्वाभाविक ही है । हम लोक में देखते हैं-अज्ञानी पर ज्ञानी एवं निर्बल पर सबल शासन करता है ।

ये दोनों चेतन पदार्थ ईश्वर तथा जीव सदैव साथ-साथ रहते हैं । जीव ईश्वर को अपना हितैषी मानता है और ईश्वर जीव का सदैव हित करता है । इसलिये पारस्परिक सम्बन्ध की दृष्टि से ये दोनो एक दूसरे के सखा = मित्र हैं ।

दार्शनिकों के कथनानुसार कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता, अर्थात् जहाँ कार्य दिखलाई देता है वहाँ कारण अवश्य है । यह संसार एक कार्य है तो इसका कोई कारण भी अवश्य मानना होगा ।

सृष्टि रचना के मुख्य तीन कारण

(१) जिससे बनाया जावे उसे **उपादान कारण** कहते हैं-प्रकृति से संसार बनाया जाता है, अतः यह उपादान कारण है ।

(२) जिन साधनों से बनाया जावे उन्हें साधारण कारण कहते हैं । संसार के **साधारण कारण** ईश्वरका सामर्थ्य आकाश दिशा काल आदि...।

(३) जो बनावे वह **निमित्त कारण** माना जाता है, अर्थात् सृष्टि निर्माता होने से ईश्वर निमित्त कारण कहाता है ।

सृष्टि रचना का प्रयोजन

'शाश्वत सत्य' यह है कि ईश्वर, जीवों के कल्याणार्थ जड़ प्रकृति से संसार को बनाता है । क्योंकि बिना शरीर और साधनों के जीव अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने एवं जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होने के लिये पुरुषार्थ करने में असमर्थ हैं ।

प्रकृति से बनाये गये ये जगत् के सभी पदार्थ केवल शरीरधारी आत्माओं के लिये हैं । ईश्वर, जीवों के लिये प्रकृति का उपयोग करता है, अपने लिये नहीं । अदाहरणार्थ-सूर्य के प्रकाश, वायु, अग्नि, जल, अन्न-ओषधियों आदि की आवश्यकता जीवों को है, ईश्वर को नहीं ।

भोग-अपवर्ग

महर्षि पतञ्जलि जी महाराज ने जीवों के लिये संसार को भोग और अपवर्ग का साधन माना है । उनका कहना है-सुसंस्कारों से युक्त जीव-मानव तन प्राप्त कर प्रभु प्रदत्त साधनों एवं निज-पुरुषार्थ से अर्जित उपलब्धियों को स्वकल्याण में सहायक बना लेते हैं । जबकि विषय-वासनाओं से ग्रसित मनुष्य देह धारी आत्माएँ केवल भोगों तक ही सीमित रहकर अपने सुअवसर का लाभ प्राप्त नहीं कर पातीं । अतःप्रत्येक मनुष्य के लिये भोग गौण

और अपवर्ग अर्थात् मुक्ति का साधन **योग** प्रमुख होना चाहिये । यह सत्य है कि शरीर जीवात्माओं के लिये बन्धन है, किन्तु इसके बिना जीवों की मुक्ति भी तो सम्भव नहीं हैं । मन-बुद्धि-चित्त-अहंकाररूपी अन्तःकरण चतुष्टय पर अंकित जन्म-जन्मातरों के अशुभ संस्कारों को योग साधना के द्वारा दग्धबीज=नष्ट करके मानव तन वाले जीव, आवागमन के चक्र से छुटकारा पा लेते हैं ।

वाद-विवाद

प्रकृति जड़ तथा भोग्य और ईश्वर परिपूर्ण है, अतः इन्हें किसी भी सांसारिक पदार्थों की आवश्यकता नहीं । जगत् तो केवल जीवात्माओं के लिये है । इस **'शाश्वत सत्य'** को ठीक से न समझ पाने के परिणामस्वरूप मध्ययुग में **ईश्वर, जीव, प्रकृति** के नाम पर परस्पर विरोधी **'मत'** उत्पन्न हो गये । जो द्वैतवाद, अद्वैतवाद, स्यादवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शून्यवाद आदि अनेक वाद-विवाद के नाम से अपना अस्तित्व बनाये बैठे हैं । आज संसार में जितने भी मत-पन्थ, सम्प्रदाय अथवा मजहब विद्यमान हैं, इनमें ईश्वर, जीव, प्रकृति विषयक मतैक्य नहीं है । आश्चर्य तो यह है किं इनकी-सृष्टिक्रम एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणों के सर्वथा विरुद्ध मान्यताएँ विश्व के बुद्धिमान कहलाने वाले मनुष्यों द्वारा स्वीकारी गई हैं ।

अभिप्राय

हमने इस पुस्तिका के माध्यम से आपको यह बताने का प्रयास किया है कि अनादि पदार्थ तीन हैं-ईश्वर-जीव-प्रकृति, जो कि **'शाश्वत सत्य'** है ।

जो कहते हैं कि **'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'** यदि इसका अभिप्राय वे यह मानते हैं कि एक ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई

नहीं, तो हम पूछना चाहते हैं-यह कौन किसको कह रहा है ? क्योंकि उनके मत में और दूसरा तो कोई है ही नहीं । वे यह भी बतायें ये अनिष्ट=अधर्म के कार्य किसके द्वारा हो रहे हैं ? क्या ब्रह्म, विषय वासनाओं से ग्रसित हो पापाचरण भी करता है ? और क्या साधना, संयम, सत्संग, स्वाध्याय सेवादि की प्रेरणा ब्रह्म के लिये आवश्यक है ? इत्यादि... इससे प्रमाणित होता है-ब्रह्म (ईश्वर) से पृथक् जीवात्मा नाम की सत्ता भी अवश्य है ।

जो यह मानते हैं कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है, वे बतावें यह विश्व किसके नियन्त्रण में है ? सूर्य से पृथ्वी की दूरी कम अधिक क्यों नहीं होती ? । सूर्योदय-सूर्यास्त होना, चन्द्रमा की कलाओं का घटना-बढ़ना, किसके द्वारा निर्मित नियम से माना जावे ? । क्योंकि नियामक, व्यवस्थापक और शासक के अभाव में नियम, व्यवस्था तथा शासन मानना उचित नहीं है । सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञसत्ता (ईश्वर) के होने की साक्षी यह सारा जड़-जङ्गम संसार स्वयं दे रहा है ।

जो प्रकृति की शाश्वत सत्ता को स्वीकार नहीं करते और कहते हैं कि जैसे मकड़ी अपने भीतर से ही तन्तु निकाल कर जाला बना देती है, वैसे ब्रह्म सृष्टि को बनाता है । तो यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि मकड़ी के जड़ शरीर से निकले जड़ तन्तुओं द्वारा जाला बना करता है । किन्तु चेतन ब्रह्म से जड़ जगत् कैसे उत्पन्न हो जाता है ? इस प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर इनके पास नहीं है । क्योंकि दार्शनिकों ने अभाव से भाव और भाव से अभाव के सिद्धान्त को नहीं माना है ।

हमने अति संक्षेप से वैदिक मान्यतानुसार ईश्वर, जीव, प्रकृति, बन्धन, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि से सम्बन्धित **'शाश्वत सत्य'** बताया, इसे और अच्छी प्रकार से समझने के लिये आप युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द द्वारा समर्थित आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय अवश्य कीजिये -

इत्योम्



सर्वकल्याणकारी सत्य सनातन वैदिकधर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान



श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट

प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट का जन्म माघ शुक्ल पञ्चमी विक्रम संवत् १९४८ को नगर पारकर जिला थर पारकर के एक सुप्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ । आपकी आजीविका का साधन व्यापार व्यावसाय रहा । आप आरम्भ से ही गो सेवक और परोपकार प्रिय रहे । आपने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अच्छी भूमिका निभाई । आप सदैव प्रसन्नचित्त रहते थे ।

आर्यसमाज नगर पारकर के वार्षिकोत्सव में हिमाचल प्रदेश से पधारे श्री पूज्य स्वामी कृष्णानन्द जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर आप विक्रम संवत् १८७६ में आर्यसमाज से जुड़े, और वैदिकधर्म प्रचार-प्रसार के कार्य में तन मन धन से सहयोग करने लग गये ।

भारत विभाजन के पश्चात् आप विक्रम संवत् २००४ को गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत भाभर नामक कस्बे में सपरिवार आकार बसे, और वहाँ विक्रम संवत् २०१५ को आर्यसमाज की हुई स्थापना में आपने अपना पूर्ण योगदान दिया । अपने सरल स्वभाव, आत्मीय व्यवहार एवं सेवाभाव से आपने बहुत यश पाया । अपने दोनों होनहार सुपुत्रों सर्व श्री लवजीभाई एवं चुनीलालभाई तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती पूराबहिन को सदैव वेदपथ पर चलते रहने की सत्प्रेरणा प्रदान करते हुए विक्रम संवत् २०१८ को आपने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट का जीवन सदैव सरल सादगी सेवाभाव एवं परिश्रम प्रिय रहा । आपने अपने श्री पूज्य पतिदेव की सर्व सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखा, और परिवार-कुटुम्ब की समृद्धि में अपना अनुभूत योगदान दिया ।

श्रीमती पूराबहिन ने सम्बन्धित नारी समुदाय के लिये एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके विक्रम संवत् २०३८ को परलोक गमन किया । ऐसे वैदिक धर्मानुयायी दम्पति को हमारा शत शत नमन - लेखक

प्रेषक
कमलेशकुमार
आर्य अग्निहोत्री
आर्यसमाज मंदिर,
देवलाली बाजार,
कुबेरनगर,
अहमदाबाद
(गुजरात)
पिनकोड ३८२३४०

PRINTED BOOK



प्राप्त कर्ता :